

## सर्वोच्च न्यायालय का प्रतिवेदन

चाँदी प्रसाद चोखानी

बनाम

बिहार राज्य

(एस.के. दास, जे.एल.कपूर, एम.हिदायतुल्लाह, जे.सी.शाह एवं टी.एल.वेंकटराम अय्यर

न्यायमूर्तिगण)

सर्वोच्च न्यायालय - विशेष अनुमति का अनुदान : व्यवहार विशेष अनुमति द्वारा अपील - विशेष अनुमति का अनुदान - क्या अपील की सुनवाई के समय उसकी उचितता पर प्रश्न उठाया जा सकता है।

विक्रयकर - राजस्व बोर्ड के पुनरीक्षण आदेश - उच्च न्यायालय के आदेश - राजस्व बोर्ड के आदेशों के विरुद्ध विशेष अनुमति - अपील की ग्राह्यता।

अपीलकर्ता फर्म का आकलन बिहार विक्रयकर अधिनियम, 1944 के अंतर्गत तीन अवधियों के लिए किया गया, जो 1 अक्टूबर 1947 से प्रारंभ होकर 31 मार्च 1950 को समाप्त हुईं। कुछ कठौतियों के दावे अस्वीकार कर दिए गए और अधिनियम की धारा 24 के अंतर्गत राजस्व बोर्ड, बिहार के समक्ष पुनरीक्षण याचिकाएँ दायर की गईं, जिन्हें क्रमशः 20 अगस्त 1953, 3 सितम्बर 1953 और 30 अप्रैल 1954 को निरस्त कर दिया गया।

इसके पश्चात अपीलकर्ता ने अधिनियम की धारा 25(1) के अंतर्गत राजस्व बोर्ड से कुछ विधिक प्रश्नों पर पटना उच्च न्यायालय को मामला संदर्भित करने का अनुरोध किया, जिसे 30 अगस्त 1954 को यह कहते हुए अस्वीकार कर दिया गया कि कोई विधिक प्रश्न उत्पन्न नहीं होता। अपीलकर्ता ने तत्पश्चात उच्च न्यायालय का दरवाज़ा खटखटाया। उच्च न्यायालय ने पहले

दो अवधियों के संबंध में आवेदन निरस्त कर दिए, परंतु 17 नवम्बर 1954 को तीसरी अवधि के संबंध में एक विधिक प्रश्न पर मामला संदर्भित करने का निर्देश दिया। 21 जनवरी 1957 को उच्च न्यायालय ने उस प्रश्न का उत्तर अपीलकर्ता के विरुद्ध दिया। इसके पूर्व, 17 फरवरी 1955 को अपीलकर्ता ने सर्वोच्च न्यायालय में विशेष अनुमति हेतु आवेदन किया, जो राजस्व बोर्ड के आदेश दिनांक 20 अगस्त 1953 और 3 सितम्बर 1953 से संबंधित था। इसी प्रकार 12 अप्रैल 1955 को तीसरी अवधि के संबंध में विशेष अनुमति हेतु आवेदन किया गया। 23 दिसम्बर 1955 को सर्वोच्च न्यायालय ने तीनों आवेदनों पर विशेष अनुमति प्रदान की, जिसमें तीसरी अवधि के संबंध में अनुमति केवल 30 अगस्त 1954 के राजस्व बोर्ड के आदेश तक सीमित थी। जब अपीलें सुनवाई हेतु आईं, तब यह प्रश्न उठाया गया कि क्या अपीलें ग्राह्य हैं, क्योंकि राजस्व बोर्ड और उच्च न्यायालय के उन आदेशों के विरुद्ध कोई अनुमति आवेदन नहीं किया गया था, जो बाद में पारित हुए थे, और विशेष अनुमति केवल राजस्व बोर्ड के प्रारंभिक आदेशों के विरुद्ध ही दी गई थी।

निर्णीत हुआ कि यद्यपि भारत के संविधान के अनुच्छेद 136 के शब्द व्यापक हैं, तथापि सर्वोच्च न्यायालय ने निरंतर यह स्थापित किया है कि व्यवहार के नियम के रूप में इस अनुच्छेद के अंतर्गत विवेकाधिकार का प्रयोग केवल *विशेष एवं असाधारण परिस्थितियों* में ही उचित ठहराया जा सकता है।

*प्रितम सिंह बनाम राज्य* [1950] एस.सी.आर. 453, *वी. गोविंदराजुलु मुदलियार बनाम आयकर आयुक्त, हैदराबाद* ए.आई.आर. 1959 एस.सी. 248 तथा *चिमनलाल रामेश्वरलाल बनाम आयकर आयुक्त (केंद्रीय), कलकत्ता* ए.आई.आर. 1960 एस.सी. 280 पर भरोसा किया गया।

*ढाकेश्वरी काँटन मिल्स लिमिटेड बनाम आयकर आयुक्त, पश्चिम बंगाल* [1955] 1 एस.सी.आर. 941 तथा *बलदेव सिंह बनाम आयकर आयुक्त, दिल्ली एवं अजमेर* [1960] 40 आई.टी.आर. 605 को स्पष्ट किया गया।

निर्णीत हुआ कि वर्तमान मामले की परिस्थितियों में अपीलकर्ता राजस्व बोर्ड के आदेशों के विरुद्ध विशेष अनुमति प्राप्त करने का अधिकारी नहीं था, क्योंकि इसका परिणाम उच्च न्यायालय के आदेशों की उपेक्षा कर उसे दरकिनार करना होता।

यह भी निर्णय हुआ कि यद्यपि अनुच्छेद 136 के अंतर्गत आवेदन पर विशेष अनुमति प्रदान की जा सकती है, तथापि न्यायालय अपील की सुनवाई के समय यह निष्कर्ष निकालने से प्रतिबंधित नहीं है कि ऐसी अनुमति प्रदान नहीं की जानी चाहिए थी।

*बालडोटा ब्रदर्स बनाम लिब्रा माइनिंग वर्क्स, ए.आई.आर. 1961 एस.सी. 100* का अनुसरण किया गया।

**दीवानी अपीलीय क्षेत्राधिकार :** नागरिक अपील संख्याएँ 170 से 172, वर्ष 1959।

ये अपीलें विशेष अनुमति द्वारा *राजस्व बोर्ड, बिहार, पटना* के निर्णयों से उत्पन्न हुईं, जो क्रमशः दिनांक 20 अगस्त 1953, 3 सितम्बर 1953 और 30 अगस्त 1954 को *संदर्भ मामले संख्या 461 एवं 462 (वर्ष 1952) तथा 430 (वर्ष 1954)* में पारित किए गए थे।

**पक्षकार :**

अपीलकर्ता : चांदी प्रसाद चोखानी

उत्तरदाता : बिहार राज्य

अधिवक्ता :

अपीलकर्ता की ओर से : वेद व्यास एवं बी. पी. महेश्वरी

उत्तरदाता की ओर से : आर. जी. प्रसाद

निर्णय की तिथि : 24 अप्रैल, 1961

न्यायालय का निर्णय *न्यायमूर्ति एस. के. दास* द्वारा सुनाया गया।

**एस. के. दास, न्यायमूर्ति :** ये तीनों अपीलें संविधान के अनुच्छेद 136 के अंतर्गत प्रदत्त विशेष अनुमति से उत्पन्न हुई हैं। इन्हें एक साथ सुना गया और यह निर्णय इन सभी अपीलों पर लागू होगा। इन अपीलों में एक समान प्रश्न उठता है, जो इस न्यायालय की व्यवहारगत परंपरा से संबंधित है।

इस प्रश्न पर विचार करने से पूर्व आवश्यक तथ्यों का संक्षेप में उल्लेख किया जाता है। अपीलकर्ता फर्म *दुर्गादत्त चांदी प्रसाद* विभिन्न प्रकार के व्यापार में संलग्न थी, परंतु मुख्यतः कच्चे जूट का व्यापार साहेबगंज, बिहार में करती थी। इसे *बिहार विक्रयकर अधिनियम, 1944* की धारा 4 के अंतर्गत 1 जुलाई 1946 से पंजीकृत किया गया। तीन अवधियों के लिए, जो 1 अक्टूबर 1947 से प्रारंभ होकर 31 मार्च 1950 को समाप्त हुईं, अपीलकर्ता का आकलन विक्रयकर हेतु किया गया। संबंधित अवधियों के कारोबार में, अन्य बातों के अतिरिक्त, दो जूट मिलों (*रायगढ़ जूट मिल्स* एवं *बंगाल जूट मिल्स*) के लिए कथित रूप से की गई खरीदें तथा अपीलकर्ता की अपनी फर्म को कलकत्ता में बिक्री हेतु भेजा गया जूट सम्मिलित था। *अवधि 1 (1 अक्टूबर 1947 - 31 मार्च 1948) :* अपीलकर्ता ने दो कटौतियों का दावा किया— (a) ₹6,58,880-5-9, यह कहते हुए कि यह राशि उपरोक्त दो जूट मिलों के लिए की गई खरीद का प्रतिनिधित्व करती है। (बी) ₹1,62,662-13-3, यह कहते हुए कि यह राशि कलकत्ता स्थित अपनी फर्म को भेजे गए जूट की है। *अवधि 2 (1 अप्रैल 1948 - 31 मार्च 1949) :* अपीलकर्ता ने उपरोक्त दो आधारों पर समान प्रकार की कटौतियों का दावा किया। *अवधि 3 (1 अप्रैल 1949 - 31 मार्च 1950) :* अपीलकर्ता ने उपरोक्त आधारों पर दावा किया, साथ ही अतिरिक्त रूप से

₹1,00,513-11-9 मूल्य के सरसों के बीज की बिक्री पन्ना लाल बिनजराज को किए जाने पर कटौती का दावा किया।

दिनांक 7 जून, 1951 को संबंधित बिक्रीकर अधिकारी ने अपीलकर्ता के पहले दो अवधियों के लिए किए गए दावे को अस्वीकृत कर दिया और दिनांक 17 अप्रैल, 1953 को तीसरी अवधि के लिए किया गया दावा भी अस्वीकृत कर दिया। तत्पश्चात अपीलकर्ता ने अधिनियम की प्रासंगिक धाराओं के अंतर्गत अपीलें दायर कीं। ये अपीलें वाणिज्यिक करों के उप आयुक्त, बिहार द्वारा सुनी गईं और अस्वीकृत कर दी गईं। इसके बाद अपीलकर्ता ने अधिनियम की धारा 24 के अंतर्गत बिहार राजस्व बोर्ड में पुनरीक्षण याचिकाएँ दायर कीं। बोर्ड ने दिनांक 20 अगस्त, 1953 और 3 सितंबर, 1953 को पहले दो अवधियों से संबंधित पुनरीक्षण याचिकाएँ अस्वीकृत कर दीं और दिनांक 30 अप्रैल, 1954 को तीसरी अवधि से संबंधित पुनरीक्षण याचिका भी अस्वीकृत कर दी। अधिनियम की धारा 25(1) के अंतर्गत अपीलकर्ता ने बोर्ड से आग्रह किया कि कुछ विधिक प्रश्नों पर मामला पटना उच्च न्यायालय को संदर्भित किया जाए। परंतु बोर्ड ने यह कहते हुए मामला संदर्भित करने से इंकार कर दिया कि पारित आदेशों से कोई विधिक प्रश्न उत्पन्न नहीं होता। बोर्ड ने यह मत व्यक्त किया कि दो प्रश्न—(1) क्या बिहार राज्य से बाहर जूट का प्रेषण अधिनियम के अंतर्गत 'विक्रय' है, और (2) क्या बिहार राज्य से बाहर स्थित दो मिलों के लिए कथित रूप से की गई खरीद कर योग्य है—दोनों ही सक्षम प्राधिकारियों द्वारा अभिलेख में उपलब्ध प्रासंगिक सामग्री पर आधारित तथ्यात्मक निष्कर्षों द्वारा तय किए जा चुके हैं और अब चुनौती के लिए खुले नहीं हैं। इसके बाद अपीलकर्ता ने उच्च न्यायालय में आवेदन किया कि बोर्ड को निर्देश दिया जाए कि वह इन विधिक प्रश्नों पर मामला संदर्भित करे, जो अपीलकर्ता के अनुसार पहले दो आकलन अवधियों के आदेशों से उत्पन्न होते थे।"अपीलकर्ता का तर्क था कि

उपरोक्त खरीदें और जूट की प्रेषणियाँ *बिहार विक्रयकर अधिनियम, 1947* के अंतर्गत "विक्रय" की परिभाषा में नहीं आतीं।

21 जनवरी 1957 के आदेश द्वारा *पटना उच्च न्यायालय* ने प्रश्न का उत्तर अपीलकर्ता के विरुद्ध दिया। उच्च न्यायालय का निष्कर्ष इस प्रकार व्यक्त किया गया:

"हम संतुष्ट हैं कि याचिकाकर्ता सरसों के बीज की बिक्री *पन्ना लाल बिनजराज* को करने पर कटौती का अधिकारी नहीं था, क्योंकि उनके पंजीकरण प्रमाणपत्र में यह उल्लेख नहीं था कि सरसों के बीज उन्हें निर्माण के उद्देश्य से करमुक्त बेचे जा सकते हैं। चूँकि धारा 5 के प्रावधान में लगाए गए शर्तें इस मामले में पूरी नहीं हुई, विक्रयकर प्राधिकारियों ने उचित रूप से निर्णय दिया कि सरसों के बीज की बिक्री की कीमत पर कटौती याचिकाकर्ता को नहीं दी जा सकती।"

इसके पश्चात, 17 फरवरी 1955 को अपीलकर्ता ने सर्वोच्च न्यायालय में विशेष अनुमति हेतु आवेदन किया, जो पहले दो अवधियों से संबंधित राजस्व बोर्ड के आदेशों (20 अगस्त 1953 एवं 3 सितम्बर 1953) पर आधारित था। सर्वोच्च न्यायालय ने 23 दिसम्बर 1955 को अनुमति प्रदान की।

यहाँ यह स्पष्ट किया जाना चाहिए कि अपीलकर्ता ने केवल राजस्व बोर्ड के उपरोक्त आदेशों के विरुद्ध अपील की अनुमति मांगी और प्राप्त की। उसने बाद के आदेशों—राजस्व बोर्ड द्वारा मामला संदर्भित करने से इंकार करने के आदेश अथवा उच्च न्यायालय द्वारा आवेदन अस्वीकार करने के आदेश—के विरुद्ध कोई अनुमति आवेदन नहीं किया और न ही कोई अनुमति प्राप्त की। तीसरी अवधि के संबंध में, जहाँ उच्च न्यायालय ने राजस्व बोर्ड को एक विशिष्ट विधिक प्रश्न पर मामला संदर्भित करने का निर्देश दिया और उस प्रश्न का उत्तर भी दिया, अपीलकर्ता ने 12 अप्रैल 1955 को सर्वोच्च न्यायालय में विशेष अनुमति हेतु आवेदन किया। सर्वोच्च न्यायालय ने 23 दिसम्बर 1955 को अनुमति प्रदान की, जो केवल 30 अगस्त 1954 के राजस्व बोर्ड के आदेश तक सीमित थी, जिसमें बोर्ड ने कहा था कि कोई विधिक प्रश्न उत्पन्न नहीं होता। अपीलकर्ता ने

न तो उच्च न्यायालय के बाद के आदेशों के विरुद्ध अनुमति मांगी और न ही प्राप्त की, जिनमें उच्च न्यायालय ने कहा था कि केवल एक प्रश्न विधिक रूप से उत्पन्न होता है और बोर्ड को उस पर मामला संदर्भित करने का निर्देश दिया था। अपीलकर्ता ने उच्च न्यायालय के 21 जनवरी 1957 के निर्णय और आदेश के विरुद्ध भी कोई कदम नहीं उठाया, जिसमें उच्च न्यायालय ने उस प्रश्न का उत्तर अपीलकर्ता के विरुद्ध दिया।

उपरोक्त तथ्यों के आधार पर जो प्रश्न उत्पन्न हुआ है, वह यह है कि क्या इस न्यायालय की व्यवहारगत परंपरा के अनुसार अपीलकर्ता को तीनों अपीलों में गुण-दोष पर सुना जा सकता है, जबकि संबंधित आकलनों से जुड़े उच्च न्यायालय के बाद के आदेशों के विरुद्ध न तो विशेष अनुमति मांगी गई और न ही प्रदान की गई, और वे आदेश अब पक्षकारों के बीच अंतिम हो चुके हैं। अन्य शब्दों में, प्रश्न यह है कि क्या अपीलकर्ता द्वारा अपनाए गए तरीके से उच्च न्यायालय को दरकिनार करने की अनुमति दी जानी चाहिए। स्थिति स्पष्ट है: पहले दो आकलन आदेशों के संबंध में उच्च न्यायालय ने कहा कि कोई विधिक प्रश्न उत्पन्न नहीं होता। तीसरे आकलन आदेश के संबंध में उच्च न्यायालय ने कहा कि केवल एक विधिक प्रश्न उत्पन्न होता है और उसका उत्तर अपीलकर्ता के विरुद्ध दिया। क्या अब अपीलकर्ता इन उच्च न्यायालय के आदेशों की उपेक्षा कर सकता है और हमसे आग्रह कर सकता है कि हम गुण-दोष पर विचार करें—पहले दो अवधियों के लिए राजस्व बोर्ड द्वारा पुनरीक्षण याचिकाओं पर पारित आदेशों पर, तथा तीसरी अवधि के लिए राजस्व बोर्ड द्वारा दिए गए आदेश पर, जिसमें कहा गया था कि कोई विधिक प्रश्न उत्पन्न नहीं होता? यह वही प्रारंभिक प्रश्न है जिसका उत्तर हमें इन तीनों अपीलों में देना है। इस प्रश्न पर विचार करना होगा— (a) संविधान के अनुच्छेद 136 के *परिधि एवं विस्तार* के संदर्भ में; (b) इस न्यायालय की *व्यवहारगत परंपरा* के संदर्भ में; तथा (सी) उस अधिनियम की *योजना एवं प्रभाव* के संदर्भ में जिसके अंतर्गत आकलन किए गए, अपीलें एवं

पुनरीक्षण सुने गए, और धारा 25 के अंतर्गत राजस्व बोर्ड से उच्च न्यायालय को विधिक प्रश्न संदर्भित करने का अनुरोध किया गया।

इस चरण पर अपीलकर्ता की ओर से उठाई गई एक प्रारंभिक आपत्ति का निपटारा करना आवश्यक है, इससे पहले कि हम मुख्य प्रश्न पर विचार करें। अपीलकर्ता की ओर से यह प्रस्तुत किया गया कि चूँकि इस न्यायालय द्वारा *विशेष अनुमति* प्रदान की जा चुकी है, इसलिए अपीलों की सुनवाई पर उठाई गई प्रारंभिक आपत्ति अब स्वीकार नहीं की जानी चाहिए और अपीलों को गुण-दोष पर सुना जाना चाहिए। हम इस तर्क को स्वीकार करने में असमर्थ हैं। इन मामलों में अनुमति बिना उत्तरदाताओं को सुने प्रदान की गई थी और अनुमति दिए जाने के समय अभिलेख में उपलब्ध संपूर्ण सामग्री न्यायालय के समक्ष प्रस्तुत नहीं थी। *बालडोटा ब्रदर्स बनाम लिब्रा माइनिंग वर्क्स* (ए.आइ.आर 1961 100) में इस न्यायालय ने स्पष्ट किया है कि अनुच्छेद 136 के अंतर्गत शक्ति के प्रयोग के दायरे में कोई भेद नहीं है—चाहे वह विशेष अनुमति के आवेदन के चरण में हो या अपील के अंतिम निपटान के चरण में। न्यायालय को यह अधिकार है कि वह अपील की सुनवाई के समय भी अनुमति दिए जाने की उचितता पर प्रश्न उठा सके। यह दृष्टिकोण इस न्यायालय के कुछ पूर्ववर्ती निर्णयों के अनुरूप है, जिनका उल्लेख *बालडोटा* मामले में किया गया है। अतः हमारे लिए यह खुला है कि हम अब विचार करें कि इन अपीलों में अनुमति उचित रूप से प्रदान की गई थी या नहीं, और क्या अपीलकर्ता समान परिस्थितियों में इस न्यायालय की व्यवहारगत परंपरा के अनुरूप गुण-दोष पर सुने जाने का अधिकारी है।

अब हम मुख्य प्रश्न पर विचार करते हैं। इस चर्चा की प्रस्तावना के रूप में अधिनियम के कुछ प्रावधानों का उल्लेख करना उचित होगा, ताकि अधिनियम की योजना और उद्देश्य स्पष्ट हो सके। **धारा 4 (आरोपण प्रावधान):** प्रत्येक व्यापारी जिसका सकल कारोबार एक निश्चित सीमा से अधिक हो, बिहार राज्य में होने वाली बिक्री पर कर देने के लिए उत्तरदायी होगा। **धारा 5:** कर



की दर निर्धारित करती है। **धारा 13 (आकलन प्रावधान):** विभिन्न परिस्थितियों का उल्लेख करती है जिनमें आकलन प्राधिकारी आकलन कर सकता है। **धारा 24:** आकलन के विरुद्ध अपील, पुनरीक्षण या पुनर्विचार का प्रावधान करती है। **धारा 25:** इसकी योजना *भारतीय आयकर अधिनियम, 1922* की धारा 66 के अनुरूप है। उपधारा (1) के अंतर्गत, यदि व्यापारी या आयुक्त राजस्व बोर्ड द्वारा धारा 24(4) के अंतर्गत पारित आदेश से असंतुष्ट है, तो वह बोर्ड से उच्च न्यायालय को विधिक प्रश्न संदर्भित करने का अनुरोध कर सकता है। यदि बोर्ड लिखित कारणों सहित ऐसा करने से इंकार करता है, तो उपधारा (2) के अंतर्गत आवेदक उच्च न्यायालय का दरवाजा खटखटा सकता है। यदि उच्च न्यायालय संतुष्ट नहीं है कि इंकार उचित था, तो वह बोर्ड को मामला संदर्भित करने का निर्देश दे सकता है। जब मामला उच्च न्यायालय को संदर्भित किया जाता है, तो उच्च न्यायालय विधिक प्रश्न का निर्णय करता है और बोर्ड उस निर्णय के अनुसार मामला निपटाता है। इस योजना से स्पष्ट है कि तथ्यात्मक प्रश्नों का निपटारा आकलन प्राधिकारी करते हैं, जिन पर अपील और पुनरीक्षण उपलब्ध है; परंतु विधिक प्रश्नों पर उच्च न्यायालय का निर्णय अंतिम होता है और उसी के अनुसार मामला निपटाया जाता है। **धारा 23:** यह कहती है कि धारा 25 में प्रदत्त प्रावधानों को छोड़कर, अधिनियम अथवा उसके अंतर्गत बनाए गए नियमों के अधीन आयुक्त या उसके सहायक द्वारा पारित कोई आकलन या आदेश किसी न्यायालय में चुनौती नहीं दी जा सकती; और धारा 24 में प्रदत्त प्रावधानों को छोड़कर, किसी भी आकलन या आदेश के विरुद्ध कोई अपील, पुनरीक्षण या पुनर्विचार नहीं किया जा सकता। स्पष्ट है कि अधिनियम की धाराएँ 23, 24 और 25 संविधान के प्रावधानों को अधिरोहित नहीं कर सकतीं और न ही इस न्यायालय की अनुच्छेद 136 के अंतर्गत शक्ति को प्रभावित कर सकती हैं। धारा 25 के अंतर्गत उच्च न्यायालय का निर्णय निस्संदेह अनुच्छेद 136 के अंतर्गत इस न्यायालय की शक्ति के अधीन है; इसी प्रकार आकलन प्राधिकारी का कोई भी

निर्धारण या आदेश, जो अनुच्छेद 136 के अर्थ में *अधिकार-प्राधिकरण (Tribunal)* है, भी इस न्यायालय की शक्ति के अधीन है।

“अनुच्छेद 136 (1) : इस अध्याय में निहित किसी भी बात के बावजूद, सर्वोच्च न्यायालय अपने विवेकाधिकार से भारत के क्षेत्र में किसी भी न्यायालय या अधिकरण द्वारा किसी वाद या मामले में पारित किसी भी *निर्णय, डिक्री, निर्धारण, दंड या आदेश* के विरुद्ध अपील हेतु विशेष अनुमति प्रदान कर सकता है।”

अनुच्छेद के शब्द अत्यंत सामान्य हैं और इसमें स्पष्ट रूप से कहा गया है कि यह न्यायालय अपने विवेकाधिकार से भारत के क्षेत्र में किसी भी न्यायालय या अधिकरण द्वारा किसी वाद या मामले में पारित *निर्णय, डिक्री, निर्धारण, दंड या आदेश* के विरुद्ध अपील हेतु विशेष अनुमति प्रदान कर सकता है। हमारे समक्ष प्रश्न यह नहीं है कि हमारे पास यह शक्ति है या नहीं —निस्संदेह हमारे पास यह शक्ति है। प्रश्न यह है कि वर्तमान परिस्थितियों में अपीलकर्ता को इस न्यायालय की अनुच्छेद 136 के अंतर्गत शक्ति का सहारा लेने की अनुमति देना विवेकाधिकार का उचित प्रयोग है या नहीं। इस प्रश्न का उत्तर प्रत्येक मामले के तथ्यों पर निर्भर करता है, और इसे इस न्यायालय की व्यवहारगत परंपरा तथा उन सीमाओं के आलोक में तय करना होगा, जिन्हें इस न्यायालय ने स्वयं अनुच्छेद 136 के अंतर्गत विवेकाधिकार के प्रयोग के संबंध में निर्धारित किया है।

“अनुच्छेद 136 का सावधानीपूर्वक परीक्षण करने पर, साथ ही इसके पूर्ववर्ती अनुच्छेद के साथ, यह स्पष्ट प्रतीत होता है कि इस न्यायालय को प्रदत्त व्यापक विवेकाधिकार शक्ति का प्रयोग *संयमपूर्वक* और केवल *असाधारण मामलों* में ही किया जाना चाहिए। यथासंभव एक समान मानक अपनाया जाना चाहिए, ताकि इस अनुच्छेद के अंतर्गत आने वाले विविध प्रकार के मामलों में विशेष अनुमति प्रदान

करने की प्रक्रिया में एकरूपता बनी रहे। इस अनुच्छेद के बल पर हम नागरिक मामलों, आपराधिक मामलों, आयकर मामलों, विभिन्न प्रकार के अधिकरणों से आने वाले मामलों तथा अन्य अनेक प्रकार के मामलों में विशेष अनुमति प्रदान कर सकते हैं। परिस्थितियों में जो एकमात्र समान मानक अपनाया जा सकता है, वह यह है कि न्यायालय केवल उन्हीं मामलों में विशेष अनुमति प्रदान करे जहाँ विशेष परिस्थितियाँ विद्यमान हों। सामान्यतः, न्यायालय विशेष अनुमति प्रदान नहीं करेगा जब तक यह प्रदर्शित न किया जाए कि *असाधारण एवं विशेष परिस्थितियाँ* मौजूद हैं, कि *गंभीर एवं पर्याप्त अन्याय* हुआ है, और कि संबंधित मामला इतना गंभीर है कि अपीलित निर्णय की पुनः समीक्षा उचित ठहरती है।”

*प्रितम सिंह बनाम राज्य* [1950] एस.सी.आर. 453 एक आपराधिक अपील का मामला था, परंतु वही दृष्टिकोण *ढाकेश्वरी कॉटन मिल्स लिमिटेड बनाम आयकर आयुक्त, पश्चिम बंगाल* [1955] 1 एस.सी.आर. 941 में भी दोहराया गया, जो एक आयकर संबंधी मामला था। वहाँ यह कहा गया:

“अनुच्छेद 136 की सीमाएँ, जो भी हों, वे स्वयं इस शक्ति के स्वरूप और प्रकृति में निहित हैं। चूँकि यह शक्ति *असाधारण एवं सर्वोपरि* है, स्वाभाविक रूप से इसका प्रयोग *संयमपूर्वक* और *सावधानीपूर्वक* केवल *विशेष एवं असाधारण परिस्थितियों* में ही किया जाना चाहिए। इसके अतिरिक्त इस शक्ति के प्रयोग को किसी निश्चित सूत्र या नियम द्वारा बाँधना संभव नहीं है।”

न्यायालय ने आगे कहा कि इस निर्णय पर विस्तार से चर्चा बाद में की जाएगी जब न्यायालय की व्यवहारगत परंपरा पर विचार किया जाएगा। यहाँ इतना कहना पर्याप्त है कि

इस न्यायालय ने निरंतर यह दृष्टिकोण अपनाया है कि अनुच्छेद 136 के अंतर्गत विवेकाधिकार का प्रयोग तभी उचित है जब *विशेष एवं असाधारण परिस्थितियाँ* विद्यमान हों।

क्या इन अपीलों में ऐसी कोई *विशेष परिस्थितियाँ* विद्यमान हैं? इसका उत्तर स्पष्ट रूप से *नकारात्मक* है। अधिनियम की जिस योजना का उल्लेख पूर्व में किया गया है, उसके अंतर्गत अब अपीलकर्ता को आकलन प्राधिकारियों द्वारा किए गए *तथ्यात्मक निष्कर्षों* को चुनौती देने की अनुमति नहीं है। विधिक प्रश्नों के संबंध में अपीलकर्ता उच्च न्यायालय तक गया था, जहाँ—पहले दो आकलन आदेशों के संबंध में उच्च न्यायालय ने कहा कि कोई विधिक प्रश्न उत्पन्न नहीं होता। तीसरे आकलन आदेश के संबंध में उच्च न्यायालय ने कहा कि केवल एक विधिक प्रश्न उत्पन्न होता है और उसका उत्तर अपीलकर्ता के विरुद्ध दिया। जैसा कि पूर्व में स्पष्ट किया गया है, उच्च न्यायालय के इन तीनों आकलन आदेशों से संबंधित निर्णय निस्संदेह इस न्यायालय में अपील योग्य थे यदि इस न्यायालय द्वारा अनुच्छेद 136 के अंतर्गत विशेष अनुमति प्रदान की जाती। परंतु अपीलकर्ता ने उच्च न्यायालय के किसी भी आदेश के विरुद्ध विशेष अनुमति हेतु आवेदन नहीं किया। परिणामस्वरूप वे आदेश अब पक्षकारों के बीच *अंतिम एवं बाध्यकारी* हो चुके हैं। जैसा कि पूर्व में स्पष्ट किया गया है, उच्च न्यायालय के इन तीनों आकलन आदेशों से संबंधित निर्णय निस्संदेह इस न्यायालय में अपील योग्य थे यदि इस न्यायालय द्वारा अनुच्छेद 136 के अंतर्गत विशेष अनुमति प्रदान की जाती। परंतु अपीलकर्ता ने उच्च न्यायालय के किसी भी आदेश के विरुद्ध विशेष अनुमति हेतु आवेदन नहीं किया। परिणामस्वरूप वे आदेश अब पक्षकारों के बीच *अंतिम एवं बाध्यकारी* हो चुके हैं। अपीलकर्ता अब जो करने का प्रयास कर रहा है, वह यह है कि उच्च न्यायालय के आदेशों की उपेक्षा कर सीधे राजस्व बोर्ड के आदेशों से अपील प्रस्तुत करे। यह अपीलकर्ता को करने की अनुमति नहीं दी जा सकती। वास्तव में, अपीलकर्ता के पक्ष में कोई विशेष परिस्थिति नहीं है; बल्कि उसके विरुद्ध अनेक परिस्थितियाँ

विद्यमान हैं। अपीलकर्ता वस्तुतः उच्च न्यायालय के आदेशों को दरकिनार कर रहा है और सीधे—पहले दो अवधियों के लिए राजस्व बोर्ड द्वारा पुनरीक्षण याचिकाओं पर पारित आदेशों से, तथा तीसरी अवधि के लिए राजस्व बोर्ड द्वारा उच्च न्यायालय को मामला संदर्भित करने से इंकार करने के आदेश से—अपील प्रस्तुत कर रहा है।

न्यायालय की परंपरा भी अपीलकर्ता के विरुद्ध है। इस विषय पर सबसे प्रारंभिक निर्णय *ढाकेश्वरी कॉटन मिल्स लिमिटेड* का है, जिस पर अपीलकर्ता के अधिवक्ता ने अपने तर्क के समर्थन में भरोसा किया है। उनका कहना था कि इस न्यायालय ने कुछ पूर्ववर्ती मामलों में अनुच्छेद 136 के अंतर्गत अपनी शक्ति का प्रयोग करते हुए अधिकरण के आदेश में हस्तक्षेप किया, यद्यपि करदाता ने उच्च न्यायालय के आदेश के विरुद्ध कोई कदम नहीं उठाया था। *ढाकेश्वरी* मामले में जो हुआ वह यह था कि करदाता ने आयकर अधिनियम, 1922 के अंतर्गत उपलब्ध सभी उपायों का उपयोग कर लिया था, जिसमें धारा 66(2) के अंतर्गत अधिकरण को *मैंडमस* जारी करने का उपाय भी शामिल था। तत्पश्चात् उसने इस न्यायालय में विशेष अनुमति हेतु आवेदन किया, जो अधिकरण के आदेश के विरुद्ध था। इस न्यायालय ने विशेष अनुमति प्रदान की और अपील में अधिकरण का आदेश निरस्त कर दिया। परंतु *ढाकेश्वरी* मामले का निर्णय वहाँ विद्यमान *विशेष परिस्थितियों* के आलोक में पढ़ा जाना चाहिए। इस न्यायालय ने पाया कि अधिकरण ने अपने निष्कर्ष तक पहुँचने में *न्याय के मूलभूत नियमों* का उल्लंघन किया था और करदाता को निष्पक्ष सुनवाई नहीं मिली थी। इसलिए यह माना गया कि यह अनुच्छेद 136 के अंतर्गत शक्ति के प्रयोग का उपयुक्त मामला था। वास्तव में, निर्णय का आधार यह था कि *प्राकृतिक न्याय के सिद्धांतों* का उल्लंघन हुआ था और निष्पक्ष सुनवाई नहीं हुई थी। हमारे समक्ष प्रस्तुत अपीलों में ऐसा कोई आरोप नहीं है और न ही कोई समान परिस्थिति विद्यमान है, जिससे अनुच्छेद 136 के अंतर्गत हमारी शक्ति का प्रयोग उचित ठहर सके।

*मोतीराम बनाम आयकर आयुक्त* [1958] एस.सी.आर. 735 में अपीलकर्ता ने आयकर अधिनियम, 1922 की धारा 66(2) के अंतर्गत कोई आवेदन नहीं किया, परंतु विशेष परिस्थितियों में—जब उसकी संपत्ति कर वसूली हेतु कुर्क कर ली गई थी और उसके विरुद्ध कार्यवाही प्रारंभ की गई थी—इस न्यायालय से विशेष अनुमति प्राप्त की। इस मामले में विशेष अनुमति प्रदान किए जाने की उचितता पर विचार नहीं किया गया, बल्कि अपील को गुण-दोष पर सुना गया और अंततः अपील *अस्वीकृत* कर दी गई।

*जोगता गोल कंपनी लिमिटेड बनाम आयकर आयुक्त, पश्चिम बंगाल* का निर्णय अपने तथ्यों पर आधारित था और इस पर काफी बहस हुई है। वहाँ विचाराधीन प्रश्न आयकर अधिनियम, 1922 की धारा 10(2)(vi) के अंतर्गत *मूल्यह्रास* (मूल्यह्रास) से संबंधित था—अर्थात् वह राशि जिस पर अपीलकर्ता कटौती भत्ता की गणना करने का अधिकारी था। आयकर अधिकारी ने एक अनुमान लगाया जिसे अपीलीय सहायक आयुक्त ने स्वीकार कर लिया। मामला अपीलीय अधिकरण तक गया, जिसने अपना अलग अनुमान लगाया। धारा 66(1) के अंतर्गत किया गया आवेदन अस्वीकृत हुआ और धारा 66(2) के अंतर्गत उच्च न्यायालय को स्थानांतरित करने का प्रयास भी असफल रहा। तत्पश्चात्, अपीलकर्ता ने इस न्यायालय में विशेष अनुमति हेतु आवेदन किया, जो अधिकरण के आदेशों के विरुद्ध था। इस न्यायालय ने विशेष अनुमति प्रदान की और अपीलों के आधार पर मामले को पुनः अधिकरण को भेजा तथा उसे निर्देश दिया कि वह दो विधिक प्रश्न उच्च न्यायालय को धारा 66(2) के अंतर्गत संदर्भित करे। यह समझना कठिन है कि अपीलीय अधिकरण के आदेशों से अपील पर सुनवाई करते हुए धारा 66(2) के अंतर्गत ऐसा निर्देश कैसे दिया जा सकता था। संभवतः इस तथ्य पर ध्यान नहीं गया। किसी भी दृष्टिकोण से, इस निर्णय को इस न्यायालय की परंपरा को अपीलकर्ता के पक्ष में स्थापित करने वाला नहीं माना जा सकता।

ओमर सलाई मोहम्मद बैत बनाम आयकर आयुक्त, मद्रास में अधिकरण ने अपने निष्कर्ष संदेह, अनुमान और कल्पना पर आधारित किए थे। इस कारण ढाकेश्वरी कॉटन मिल्स प्रकरण में स्थापित सिद्धांत का अनुसरण किया गया। इसी प्रकार सरदार बलदेव सिंह बनाम आयकर आयुक्त, दिल्ली एवं अजमेर का निर्णय भी अपने तथ्यों पर विशेष था। वहाँ अपीलकर्ता द्वारा अधिकरण में किया गया आवेदन सीमा अवधि से बाधित था और यह परिस्थिति अपीलकर्ता के नियंत्रण से बाहर थी। अधिकरण ने सीमा अवधि के आधार पर संदर्भ हेतु आवेदन अस्वीकृत कर दिया और उच्च न्यायालय के पास समय बढ़ाने की शक्ति नहीं थी। इन परिस्थितियों में अपीलकर्ता ने विशेष अनुमति और विलंब की क्षमा याचना की। न्यायालय ने विलंब को क्षमा करते हुए विशेष अनुमति प्रदान की।

"वी. गोविंदराजुलु मुदलियार बनाम आयकर आयुक्त, हैदराबाद का निर्णय इस विषय में अधिक प्रासंगिक है। यह मामला उन अपीलों से संबंधित था जो अधिकरण के निर्णयों के विरुद्ध विशेष अनुमति द्वारा इस न्यायालय में लाए गए थे, जबकि उच्च न्यायालय ने धारा 66(2) के अंतर्गत आवेदन अस्वीकृत कर दिया था। इस न्यायालय ने तब यह टिप्पणी की: "जब उच्च न्यायालय द्वारा धारा 66(2) के अंतर्गत आवेदन अस्वीकृत कर दिया जाता है, तब भी इस न्यायालय को अनुच्छेद 136 के अंतर्गत विशेष अनुमति प्रदान करने का अधिकार है। परंतु इस शक्ति का प्रयोग केवल उन्हीं मामलों में किया जाएगा जहाँ असाधारण परिस्थितियाँ विद्यमान हों और न्याय के मूलभूत सिद्धांतों की रक्षा हेतु हस्तक्षेप आवश्यक हो।"

यह उल्लेख करना आवश्यक है कि अधिकरण के आदेश के विरुद्ध अपीलकर्ता ने आयकर अधिनियम, 1922 की धारा 66(2) के अंतर्गत उच्च न्यायालय में संदर्भ हेतु आवेदन किया था, जिसे माननीय उच्च न्यायालय के न्यायाधीशों ने अस्वीकृत कर दिया। उस आदेश के विरुद्ध कोई अपील प्रस्तुत नहीं की गई। वर्तमान अपील सीधे अधिकरण के निर्णय के विरुद्ध है। निस्संदेह,

*ढाकेश्वरी काँटन मिल्स लिमिटेड बनाम आयकर आयुक्त, पश्चिम बंगाल* [1955] 1 एस.सी.आर. 941 में इस न्यायालय ने यह निर्णय दिया था कि आयकर अधिनियम के अंतर्गत अपीलीय अधिकरण के निर्णय के विरुद्ध अनुच्छेद 136 के अंतर्गत इस न्यायालय में अपील की जा सकती है। परंतु इस मामले में, चूँकि अपीलकर्ता ने उच्च न्यायालय का दरवाज़ा खटखटाया था और वहाँ उसके विरुद्ध निर्णय दिया गया है, जो अब अंतिम हो चुका है, इसलिए यह स्पष्ट है कि अपीलकर्ता को यह अनुमति नहीं दी जा सकती कि वह अधिकरण के निर्णय की शुद्धता पर उन आधारों पर प्रश्न उठाए जो उच्च न्यायालय के निर्णय के विरुद्ध अपील में उठाए जा सकते थे।

*मेसर्स चिम्मनलाल रामेश्वरलाल बनाम आयकर आयुक्त (केंद्रीय), कलकत्ता* में तथ्य इस प्रकार थे: इस न्यायालय द्वारा अनुच्छेद 136 के अंतर्गत विशेष अनुमति प्रदान किए जाने पर चार अपीलें दायर की गईं, जो अपीलीय अधिकरण के उन आदेशों के विरुद्ध थीं जिनमें उसने धारा 66(1) के अंतर्गत किए गए आवेदन पर मामला संदर्भित करने से इंकार किया था। अपीलीय अधिकरण द्वारा धारा 33(4) के अंतर्गत पारित आदेशों के विरुद्ध कोई अपील दायर नहीं की गई थी, और न ही उच्च न्यायालय द्वारा धारा 66(2) के अंतर्गत पारित आदेशों के विरुद्ध कोई अपील दायर की गई थी। यह स्थिति हमारे समक्ष प्रस्तुत अपील में *तीसरी अवधि के आकलन* से संबंधित मामले के समान है। इन परिस्थितियों में इस न्यायालय ने यह टिप्पणी की:

“जब अपीलीय अधिकरण द्वारा धारा 66(1) के अंतर्गत आवेदन अस्वीकृत कर दिया जाता है और उच्च न्यायालय द्वारा धारा 66(2) के अंतर्गत आदेश पारित हो चुका है, तब अनुच्छेद 136 के अंतर्गत विशेष अनुमति का प्रयोग केवल उन्हीं मामलों में किया जा सकता है जहाँ असाधारण परिस्थितियाँ विद्यमान हों। अन्यथा, अपीलकर्ता को उच्च न्यायालय के आदेशों को दरकिनार कर सीधे अधिकरण के आदेशों को चुनौती देने की



अनुमति नहीं दी जा सकती।” “वर्तमान मामले में अपीलकर्ताओं के समक्ष जो अत्यंत महत्वपूर्ण और निर्णायक परिस्थिति है, वह यह है कि इसी बिंदु पर उच्च न्यायालय ने धारा 66(2) के अंतर्गत अपीलकर्ताओं द्वारा किए गए आवेदनों पर विचार कर एक *विचारित निर्णय* दिया था, जिसमें यह निष्कर्ष निकाला गया कि अधिकरण के आदेश से कोई विधिक प्रश्न उत्पन्न नहीं होता।

यह निर्णय अब तक अपीलकर्ताओं द्वारा किसी भी प्रकार से चुनौती नहीं दिया गया है और अंतिम रूप से विद्यमान है।

यदि हम इन अपीलों पर गुण-दोष के आधार पर विचार करें, तो परिणाम यह होगा कि या तो हम उच्च न्यायालय द्वारा दिए गए निर्णय की पुष्टि करेंगे, अथवा उससे भिन्न निष्कर्ष पर पहुँचेंगे। यदि हम पूर्व विकल्प अपनाएँ, तो अपीलकर्ता स्वतः ही न्यायालय से बाहर हो जाएँगे; और यदि संयोगवश हम विपरीत निष्कर्ष पर पहुँचें और यह मानें कि उच्च न्यायालय ने अपीलकर्ताओं के धारा 66(2) के आवेदन अस्वीकार करने में त्रुटि की, तो दो यदि हम विपरीत निष्कर्ष पर पहुँचते और यह मानते कि उच्च न्यायालय ने अपीलकर्ताओं के धारा 66(2) के आवेदन अस्वीकार करने में त्रुटि की, तो परिणामस्वरूप दो परस्पर विरोधी निर्णय हो जाते—एक उच्च न्यायालय का और दूसरा हमारा। इस प्रकार हम, यद्यपि अपीलकर्ताओं द्वारा अपनाई जाने वाली उचित प्रक्रिया के बिना, उच्च न्यायालय के निर्णय को अप्रत्यक्ष रूप से निरस्त कर रहे होते। यह स्थिति न्यायालयों के बीच *सौहार्द* की अवधारणा के विपरीत है। यद्यपि हम एक ऐसा न्यायालय हैं जो कुछ परिस्थितियों में उच्च न्यायालय के निर्णयों को निरस्त या अधिरोहित कर सकता है, परंतु हम सामान्य

प्रक्रिया को दरकिनार कर अपीलकर्ताओं द्वारा सुझाए गए तरीके से अप्रत्यक्ष रूप से ऐसा परिणाम उत्पन्न नहीं कर सकते। अतः हम यह मानते हैं कि वर्तमान परिस्थितियों में इन अपीलों पर गुण-दोष के आधार पर विचार करना अनुचित होगा। इसलिए हम इन अपीलों को बिना किसी और चर्चा के *अस्वीकृत* करते हैं।”

“हम मानते हैं कि पूर्ववर्ती टिप्पणियाँ यहाँ भी समान रूप से लागू होती हैं।”

इस न्यायालय के पूर्ववर्ती निर्णयों का सावधानीपूर्वक परीक्षण करने पर यह स्पष्ट होता है कि जब भी इस प्रश्न पर विचार किया गया, न्यायालय ने यह कहा कि *ढाकेश्वरी कॉटन मिल्स* या *बलदेव सिंह* जैसे असाधारण एवं विशेष परिस्थितियों को छोड़कर, अनुच्छेद 136 के अंतर्गत शक्ति का प्रयोग इस प्रकार नहीं किया जाएगा कि उच्च न्यायालय को दरकिनार कर उसके निर्णय की उपेक्षा की जाए—वह निर्णय जो पक्षकारों के बीच अंतिम और बाध्यकारी हो चुका है—और सीधे अधिकरण के आदेशों से अपील स्वीकार की जाए। इस प्रकार की शक्ति का प्रयोग विशेष रूप से अनुचित होगा जब परिणामस्वरूप दो सक्षम न्यायालयों के निर्णयों में *विरोधाभास* उत्पन्न हो जाए, जो अधिनियम की धाराएँ 23, 24 और 25 के अंतर्गत *विचारित नहीं* हैं। इसके विपरीत, इन धाराओं का उद्देश्य ही यह है कि आकलन प्राधिकारियों के तथ्यात्मक प्रश्नों पर निर्णय अंतिम हो, जो धारा 24 के अंतर्गत अपील, पुनरीक्षण या पुनर्विचार के अधीन हो; और विधिक प्रश्नों पर उच्च न्यायालय का निर्णय अंतिम हो, जो धारा 25 के अंतर्गत इस न्यायालय में अपील योग्य हो। उच्च न्यायालय के विधिक प्रश्न पर दिए गए निर्णय की उपेक्षा करना वस्तुतः अधिनियम की धारा 25 के वैधानिक प्रावधानों को *निरर्थक* बना देगा।”

अब अपीलकर्ता की ओर से प्रस्तुत अंतिम तर्क पर विचार करना शेष है। अपीलकर्ता के अधिवक्ता ने हमारा ध्यान संविधान के अनुच्छेद 133 की ओर आकर्षित किया है और यह इंगित किया है कि जब उच्च न्यायालय अनुच्छेद 133 के अंतर्गत प्रमाणपत्र देने से इंकार करता है, तब इस न्यायालय को मुख्य निर्णय के विरुद्ध विशेष अनुमति प्रदान करने का अधिकार है (और इस न्यायालय ने अनेक बार ऐसी विशेष अनुमति प्रदान की है), चाहे उच्च न्यायालय द्वारा प्रमाणपत्र देने से इंकार करने का आदेश हो। यह तर्क दिया गया कि वही *समानता* यहाँ भी लागू होनी चाहिए और अधिनियम की धारा 25 के अंतर्गत उच्च न्यायालय के आदेशों के बावजूद यह न्यायालय अधिकरण के आदेशों से अपील हेतु विशेष अनुमति प्रदान कर सकता है। हम इस समानता को उपयुक्त नहीं मानते। प्रथम, अनुच्छेद 133 के अंतर्गत आवेदन पर विचार करते समय उच्च न्यायालय केवल यह देखता है कि उसके अपने निर्णय के संबंध में प्रमाणपत्र दिया जाए या नहीं; ऐसे मामले में वह अधिनियम की धारा 25 के अंतर्गत विधिक प्रश्न का निर्णय नहीं करता। द्वितीय, अनुच्छेद 133 के अंतर्गत आदेश से उत्पन्न स्थिति में दो सक्षम न्यायालयों के निर्णयों में *विरोधाभास* उत्पन्न होने की संभावना नहीं होती, क्योंकि विशेष अनुमति प्रदान किए जाने पर अपील सीधे उच्च न्यायालय के *मुख्य निर्णय* के विरुद्ध होती है। इस प्रकार किसी न्यायालय या अधिकरण को दरकिनार नहीं किया जाता। इसके अतिरिक्त, जैसा कि हमने पूर्व में कहा है, प्रश्न इस न्यायालय की शक्ति का नहीं है; प्रश्न यह है कि अनुच्छेद 136 के अंतर्गत विशेष अनुमति प्रदान करने में विवेकाधिकार का *उचित प्रयोग* क्या होना चाहिए।”

इन अपीलों में हम इस निष्कर्ष पर पहुँचे हैं कि अपीलकर्ता हमारे समक्ष अनुच्छेद 136 के अंतर्गत शक्ति का प्रयोग करने का अधिकार नहीं रखता। कोई विशेष परिस्थिति ऐसी नहीं है जो इस शक्ति के प्रयोग को न्यायोचित ठहराती हो; इसके विपरीत परिस्थितियाँ ऐसी हैं कि उच्च न्यायालय के आदेशों की उपेक्षा कर अपीलकर्ता को उसे दरकिनार करने की अनुमति देना सिद्धांत और प्राधिकार दोनों दृष्टियों से अनुचित होगा। हमारे विचार में इन मामलों में विशेष अनुमति विधिपूर्वक प्रदान नहीं की गई थी और तदनुसार हम अपीलों को लागत सहित निरस्त करते हैं, बिना गुण-दोष में प्रवेश किए। एक ही सुनवाई शुल्क होगा।

“इन अपीलों को *निरस्त* किया जाता है।”

खंडन (डिस्क्लेमर)- स्थानीय भाषा में निर्णय के अनुवाद का आशय, पक्षकारों को इसे अपनी भाषा में समझने के उपयोग तक ही सीमित है और अन्य प्रयोजनार्थ इसका उपयोग नहीं किया जा सकता । समस्त व्यवहारिक, कार्यालयी, न्यायिक एवं सरकारी प्रयोजनार्थ, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण ही प्रमाणिक होगा साथ ही निष्पादन तथा कार्यान्वयन के प्रयोजनार्थ अनुमान्य होगा।